

जी. महालिंगप्पा

बनाम

जी. एम. सविथा

9 अगस्त, 2005

[डी. एम. धर्मधारी और तारून चटर्जी, जे. जे.]

बेनामी लेनदेन (निषेध) अधिनियम, 1988: धारा 4(2)।

बेनामी लेनदेन- प्रकृति- पिता ने अपनी नाबालिग बेटी के नाम पर वाद संपत्ति खरीदी-इसके बाद बेटी ने वाद की संपत्ति के स्वामित्व की घोषणा और कब्जे की वसूली के लिए अधिनियम के लागू होने से पहले मुकदमा दायर किया- पिता ने अपने लिखित बयान में बेनामी की याचिका ली और दावा किया कि वह वाद की संपत्ति का वास्तविक मालिक था- अभिनिर्धारित किया गया: वाद और लिखित बयान अधिनियम के लागू होने से बहुत पहले दायर किए गए थे- इसलिए, पिता को बेनामी की याचिका उठाने और यह साबित करने का अधिकार था कि वह मुकदमे की संपत्ति का वास्तविक मालिक था- ऐसे मामले में धारा 4(2) लागू नहीं था।

बेनामी लेनदेन- बचाव की याचिका- संभावित या पूर्वव्यापी होने की प्रकृति अभिनिर्धारित किया गया: यह अधिनियम संभावित प्रकृति का था और इसमें कुछ मामलों को छोड़कर पूर्वव्यापी संचालन नहीं था- हालांकि, धारा 4(2) इस हद तक पूर्वव्यापी है कि इसके शुरू होने के बाद पिछले बेनामी लेनदेन के संबंध में बेनामी की याचिका के आधार पर कोई बचाव स्वीकार्य नहीं है।

धारा 3(2)- बेनामी लेनदेन- पत्नी या अविवाहित बेटी के नाम पर उनके लाभ के लिए संपत्ति की खरीद के तहत अनुमान अभिनिर्धारित किया गया: साक्ष्य या अन्य सामग्री के उत्पादन द्वारा खंडन योग्य है।

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908:

धारा 100- दूसरी अपील- तथ्य के समवर्ती निष्कर्ष- उच्च न्यायालय की शक्ति के साथ हस्तक्षेप- अभिनिर्धारित किया गया: प्रस्तुत किए गए अभिवचनों पर विचार करने और अभिलेख पर मौजूद मौखिक और दस्तावेजी साक्ष्यों पर दिए गए समवर्ती निष्कर्ष जो न तो विकृत थे और न ही बिना किसी कारण के और किसी भी महत्वपूर्ण साक्ष्य पर विचार न करने या कुछ पक्षकार को स्वीकार न करने से ग्रसित थे तब उच्च न्यायालय द्वारा दूसरी अपील में हस्तक्षेप, उचित नहीं है।

अपीलकर्ता-पिता ने अपनी नाबालिग बेटी प्रतिवादी के नाम पर वाद की संपत्ति खरीदी- जब वह नाबालिग थी। इसके बाद प्रतिवादी ने स्वामित्व की घोषणा और वाद की सम्पत्ति पर कब्जा वापस पाने के लिए एक मुकदमा दायर किया। अपीलकर्ता ने अपने लिखित बयान में याचिका दायर की कि वाद की संपत्ति प्रतिवादी के नाम पर बेनामी खरीद की गई थी और उसने खुद को वाद की संपत्ति का वास्तविक मालिक होने का दावा किया। मुकदमे के लंबित रहने के दौरान बेनामी लेन देन (निषेध) अधिनियम, 1988 लागू हुआ।

निचली अदालत के साथ-साथ अपीलीय अदालत ने इस तथ्य के समवर्ती निष्कर्षों पर मुकदमे का फैसला सुनाया कि अपीलकर्ता वाद की सम्पत्ति का असली मालिक था और प्रतिवादी केवल अपीलकर्ता का बेनामीदार था।

हालांकि, उच्च न्यायालय ने दूसरी अपील से इस आधार पर मुकदमे पर फैसला सुनाया कि अपीलकर्ता ने प्रतिवादी के लाभ के लिये वाद की सम्पत्ति खरीद की। इसलिये अपील हुई थी।

न्यायालय के समक्ष निम्नलिखित प्रश्न उठा:

क्या बेनामी लेनदेन (निषेध) अधिनियम, 1988 की धारा 4(2) के तहत, बेनामी रखी गई किसी भी सम्पत्ति के संबंध में किसी भी अधिकार

पर बचाव की अनुमति दी जा सकती है, चाहे वह उस व्यक्ति के खिलाफ या अन्य व्यक्ति के खिलाफ, किसी मुकदमे, दावे या कार्यवाही में या ऐसी सम्पत्ति पर, वास्तविक मालिक होने का दावा करने वाले व्यक्ति की ओर से?

कोर्ट ने अपील स्वीकार करते हुए अभिनिर्धारित किया:

1. *राजा गोपाल रेड्डी* के मामले में इस न्यायालय ने यह माना है कि बेनामी लेनेदेन (निषेध) अधिनियम, 1988 प्रकृति में सभां वित था और कुछ मामलो को छोडकर इसका कोई पूर्वव्यापी संचालन नहीं है अर्थात अधिनियम की धारा 4(1) लागू होने के बाद ऐसे पिछले बेनामी लेनदेन के संबंध में कोई मुकदमा दायर नहीं किया जा सकता है। इसलिये, यह माना जाना चाहिये कि अधिनियम की धारा 4(2) की पूर्व व्यापिता के प्रश्न पर कानून की समान स्थिति है।

आर. राजगोपाल रेड्डी बनाम पद्मिनी चन्द्रशेखरन [1995] (2) एससीसी 630, *प्रबोध चंद्र घोष बनाम उर्मिला दस्सी एआईआर* (2000) एससी 2534 और *सी. गंगाचरण बनाम सी. नारायणन एआईआर* 2000 एससी 589, के अनुसार *मिथिलेश कुमारी व अन्य बनाम प्रेम बिहारी खरे* (1989) 2 एससीसी 95, संदर्भित

2. वर्तमान मामले में, मुकदमा, अधिनियम लागू होने से बहुत पहले दायर किया गया था। यह एक स्वीकृत स्थिति है कि बेनामी की दलील लेने वाले लिखित बयान मुकदमे में अधिनियम लागू होने से बहुत पहले अपीलकर्ता द्वारा दायर किया गया था। इसलिये यह ऐसा मामला नहीं था जहां अधिनियम की धारा 4(2) लागू होने के बाद लंबित मुकदमे में अधिनियम की धारा 4(2) का सीमित संचालन होगा। यह सच है कि निचली अदालत का फैसला अधिनियम लागू होने के बाद दिया गया था लेकिन यह अपीलकर्ता के अपने बचाव में बेनामी की दलील लेने के अधिकार को बाधित नहीं कर सकता था। इसलिये अपीलकर्ता को लिखित बयान में बेनामी की दलील देने और दिखाने और साबित करने का अधिकार था कि वह मुकदमे की संपत्ति का असली मालिक था। और प्रतिवादी केवल बेनामीदार था।

3. अधिनियम की धारा 3(2) बहुत स्पष्ट करती है कि यदि अविवाहित बेटी के नाम पर उसके लाभ के लिये सम्पत्ति खरीदी जाती है, तो यह केवल एक धारणा होगी, लेकिन उक्त धारणा का खण्डन उस व्यक्ति द्वारा, न्यायालय के समक्ष साक्ष्य या अन्य सामग्री प्रस्तुत करके, किया जा सकता है जो आरोप लगा रहा है कि वह संपत्ति का असली मालिक है। इस मामले में, निचली अदालत के साथ-साथ अपीलीय अदालत ने समवर्ती रूप से पाया कि यद्यपि वाद की सम्पत्ति प्रतिवादी के नाम पर खरीदी गई

थी। लेकिन अपीलकर्ता के हित के लिये खरीदी गई थी। भले ही अधिनियम की धारा 3(2) के तहत अनुमान पिता (इस मामले में अपीलकर्ता) द्वारा अपनी बेटी (इस मामले में प्रतिवादी) के नाम पर मुकदमे की सम्पत्ति खरीदने के कारण उत्पन्न हुआ हो, उस अनुमान का खण्डन अपीलकर्ता द्वारा ठोस सबूत पेश करके हो गया है। अपीलकर्ता यह साबित करने में सफल रहा कि वाद सम्पत्ति अपने फायदे के लिए उसने प्रतिवादी की बेनामी पर खरीद की।

4. मौजूदा मामले, अपीलीय अदालत के साथ साथ निचली अदालत द्वारा निकाले गये तथ्य के समवर्ती निष्कर्ष था तो विकृत नहीं थे या बिना किसी कारण के थे या महत्वपूर्ण सबूतो था कुछ पक्षों की स्वीकृति पर आधारित नहीं थे। इसलिये, उच्च न्यायालय का अपीलीय अदालत के साथ-साथ निचली अदालत द्वारा दिए गए समवर्ती निष्कर्षों जो तथ्य के निष्कर्ष के साथ-साथ अभिलेख सामग्री (मौखिक और दस्तावेज) साक्ष्य पर विचार करने के बाद दिये थे, में हस्तक्षेप करना उचित नहीं था।

देवा बनाम सज्जन कुमार [2003 (7) एससीसी 481, *सईदा अख्तर बनाम अब्दुल अहद* 2003 (7) एससीसी 52, एवं *सरस्वती एवं अन्य बनाम एस.गणपति* 2001 (4) एससीसी 694, पर भरोसा किया गया।

सिविल अपीलीय क्षेत्राधिकार: अपील (सिविल) 2867/2000

कर्नाटक उच्च न्यायालय के आ.एस.ए 1990 की संख्या 315 में दिनांकित 27.11.1997 के निर्णय एवं आदेश से।

जी. वी. चन्द्र शेखर और पी. पी. सिंह याचिकाकर्ता की ओर से।

एन. डी. बी. राजू, गुंटूर प्रभाकर और सुश्री भारती प्रतिवादी की ओर से।

न्यायालय का निर्णय इनके द्वारा दिया गया

तरुण चटर्जी, ज.:

यह कर्नाटक राज्य के चित्रदुर्ग तालुक के गारेहट्टी गांव के खाता नंबर 54 में लगभग 40 फीट X 30 फीट के घर के स्वामित्व के अधिकार पर एक पिता और उसकी विवाहित बेटी के बीच एक दुर्भाग्यपूर्ण मुकदमा है (इसके बाद इसे "वाद संपत्ति" कहा जायेगा)।

अपीलकर्ता, जिसे बेंगलूर (कर्नाटक) में उच्च न्यायालय के समक्ष दूसरी अपील में हार का सामना करना पड़ा, ने एक विशेष अनुमति याचिका दायर की, जिसे स्वीकार किए जाने पर इस न्यायालय में सिविल अपील संख्या 2867/2000 के रूप में एक नियमित अपील के रूप में पंजीकृत किया गया।

अपीलकर्ता प्रतिवादी का पिता है। वाद संपत्ति अपीलकर्ता द्वारा प्रतिवादी के नाम पर 24 अगस्त, 1970 को एक पंजीकृत बिक्री विलेख द्वारा खरीदी गई थी जब प्रतिवादी सात वर्ष की नाबालिग थी। इसके बाद, उसकी शादी तय हो गई और उस समय उसे आश्वासन दिया गया कि प्रतिवादी को परेशान नहीं किया जाएगा क्योंकि उसे यह समझने दिया गया था कि वाद की संपत्ति उसकी अपनी संपत्ति थी। उसकी शादी 4 दिसंबर, 1980 को श्री सी. थिप्पेस्वामी से हुई थी। अपीलकर्ता और प्रतिवादी के बीच संबंध 8 अक्टूबर, 1983 तक सौहार्दपूर्ण थे और उसके बाद ही रिश्ते तनावपूर्ण हो गए। उस स्तर पर उसने न केवल अपीलकर्ता और उसके परिवार से, बल्कि उन किरायेदारों से भी, जो मुकदमे में प्रतिवादी 2 से 5 थे, वाद की संपत्ति खाली करने और उसे किराए का भुगतान करने के लिए कहा। हालाँकि, अपीलकर्ता और किरायेदारों ने अपने कब्जे वाली संपत्ति के संबंधित हिस्से को खाली करने या उसे किराया देने से इनकार कर दिया था। तदनुसार, प्रतिवादी को वाद की संपत्ति के संबंध में स्वामित्व की घोषणा और कब्जे की वसूली के लिए मुकदमा दायर करने के लिए बाध्य किया गया था, इस आधार पर कि चूंकि मुकदमा संपत्ति उसके नाम पर थी, और उसे प्रतिवादी के लाभ के लिए और अपने विवाह के प्रतिभूति के रूप में खरीदा गया था, इसीलिए वह घोषणा और कब्जे की डिक्री की हकदार थी। हालाँकि मुकदमा 5 जुलाई, 1984 को दायर किया गया था।

अपीलकर्ता ने लिखित बयान दाखिल करके विभिन्न आधारों पर प्रतिवादी के दावे का विरोध किया। अपीलकर्ता के अनुसार, वाद संपत्ति उनकी बेटी के बेनामी में उनके स्वयं के धन से खरीदी गई थी। उन्होंने इस आरोप का भी खण्डन किया कि वाद संपत्ति प्रतिवादी के लिए और उसकी ओर से 24 अगस्त, 1970 के विक्रय विलेख के तहत खरीदी गई थी और न ही इसे उसकी शादी के लिए प्रतिभूति के रूप में खरीदा गया था। उनके अनुसार, प्रतिवादी का जन्म 5 नवंबर, 1963 को हुआ था और जन्म के तुरंत बाद एक ज्योतिषी से संपर्क किया गया था जिससे अपीलकर्ता को पता चला कि उसका जन्म एक शुभ नक्षत्र में हुआ था और इसके तुरंत बाद उसने अपने निवास के लिए एक घर का निर्माण करने के लिये एक साइट खरीदने का मन बना लिया। तदनुसार, उसने वाद की संपत्ति 500/- रुपये की राशि में खरीदी। अपीलकर्ता का इरादा प्रतिवादी का वाद की संपत्ति में कोई लाभ, कोई अधिकार पैदा करना नहीं था। हालाँकि, वर्ष 1984 में, वाद की संपत्ति का प्रतिवादी और दो बेटों के पक्ष में एक वसीयत द्वारा वसीयत कर दी गई थी। प्रतिवादी के बेनामी संपत्ति खरीदने के बाद, उसने वाद की संपत्ति में सुधार किया और ऐसा करते हुए उसने श्रीनिवास सेट्टी के पक्ष में वाद की संपत्ति को गिरवी रख दिया और 15 सितंबर, 1972 को 3,000/- रुपये का ऋण प्राप्त किया। इसके बाद, उसने 23 मई, 1972 को एक विक्रय विलेख के तहत वाद संपत्ति के बगल में एक और जगह खरीदी। वह विक्रय विलेख भी प्रतिवादी के नाम पर प्यार

और स्नेह से प्राप्त किया गया था। उस समय प्रतिवादी लगभग नौ वर्ष की थी। अपने स्वयं के पैसे खर्च करने के बाद बंधक की गई शेष राशि का उपयोग घर के पिछले हिस्से के निर्माण के लिये किया गया था। उसमें सुधार करने के बाद उसने चार हिस्सों का निर्माण किया जो कि किरायेदारों के कब्जे में थे, और उसने स्वयं संपत्ति के निर्माण के लिए बंधक ऋण और अन्य ऋणों का भुगतान किया। उसने गैर-कृषि उद्देश्यों के लिए वाद संपत्ति के हस्तांतरण के लिए उपायुक्त की अनुमति भी प्राप्त की। उसने घर के निर्माण के संबंध में राजस्व अधिकारियों द्वारा लगाए गए करों का भुगतान किया। उसने समय-समय पर वाद की संपत्ति के हस्तांतरण शुल्क और कांडयम का भुगतान भी किया। तदनुसार, अपीलकर्ता ने अन्य बातों के साथ-साथ इस आधार पर वाद को खारिज करने की मांग की कि वह वाद की संपत्ति का वास्तविक मालिक था और उस पर उसका कब्जा था और प्रतिवादी इसके संबंध में केवल एक बेनामीदार था। निम्नलिखित मुद्दों के साथ वाद चलाया गया:

- 1) क्या वादी यह साबित करती है कि वह वाद की संपत्ति की मालिक है?
- 2) क्या वह अपने वाद के अनुसार वाद की संपत्ति पर कब्जा करने की हकदार है?
- 3) क्या वह अपने वाद के अनुसार हर्जाने की हकदार है?

4) वादी किस राहत का हकदार था, यदि कोई हो?

एक अतिरिक्त मुद्दा तैयार किया गया जो निम्नलिखित प्रभाव वाला है:

क्या प्रतिवादी नंबर 1 यह साबित करता है कि मुकदमा लिखित में अनुरोध की गई परिस्थितियों के तहत वादी के नाम पर नाममात्र रूप से खरीदा गया था, वादी एक बेनामीदार है और वह वाद की संपत्ति की असली मालिक है, जैसा कि तर्क दिया गया है?

पक्षकार अपने-अपने दावों के समर्थन में साक्ष्य पेश करने के बाद मुकदमे में चले गए, जैसा कि दलीलों में बताया गया था।

दोनों अदालतों ने अभिलेख पर मौखिक और दस्तावेजी साक्ष्य के साथ-साथ अभिवचनों पर विचार करते हुये पाया कि-

- 1) अपीलकर्ता ने खरीद के पैसे का भुगतान किया था।
- 2) मूल स्वामित्व विलेख अपीलकर्ता के पास थे।
- 3) अपीलकर्ता ने उसमें सुधार के लिए ऋण जुटाने के लिए वाद की संपत्ति को गिरवी रख दिया था।
- 4) उसने वाद की संपत्ति के लिए करों का भुगतान किया।

5) उसने वाद की संपत्ति को प्रतिवादी संख्या 2 से 5 को किराए पर दे दिया था और उनसे किराया वसूल किया था।

6) वादी के नाम पर वाद संपत्ति खरीदने का मकसद यह था कि वादी का जन्म शुभ नक्षत्र में हुआ था और अपीलकर्ता का मानना था कि यदि संपत्ति वादी/प्रतिवादी के नाम पर खरीदी गई, तो अपीलकर्ता समृद्ध होगा।

7) लेन-देन के आसपास की परिस्थितियाँ, पक्षकारों के संबंध और अपीलकर्ता के बाद के आचरण की प्रवृत्ति से पता चलता है कि लेन-देन बेनामी प्रकृति का था।

तथ्य के उपरोक्त समवर्ती निष्कर्षों पर यह अभिनिर्धारित किया गया कि प्रतिवादी यह साबित करने में विफल रही है कि वह वाद की संपत्ति की असली मालिक थी और अपीलकर्ता हालांकि उसका वास्तविक मालिक था और प्रतिवादी केवल अपीलकर्ता का बेनामीदार था।

तदनुसार, अपीलीय अदालत के साथ-साथ निचली अदालत ने भी प्रतिवादी का वाद खारिज कर दिया।

अपीलीय अदालत के साथ-साथ निचली अदालत के समवर्ती निर्णयों से व्यथित महसूस करते हुए, बेंगलोर में उच्च न्यायालय के समक्ष एक दूसरी अपील दायर की गई, जिसने, हालांकि, समवर्ती निर्णयों को रद्द कर

दिया था और केवल इस आधार पर प्रतिवादी के मुकदमे पर फैसला सुनाया था कि प्रतिवादी के नाम पर अपीलकर्ता द्वारा की गई खरीद प्रतिवादी के लाभ के लिए थी। इस निष्कर्ष पर पहुंचते समय, उच्च न्यायालय ने इस तथ्य को ध्यान में रखा था कि चूंकि अपीलकर्ता ने पहले ही अपनी संपत्ति प्रतिवादी और दो अन्य बेटों को देने के लिए एक वसीयत निष्पादित कर दी थी, जो उच्च न्यायालय के अनुसार, यह स्पष्ट रूप से दर्शाता है कि उसका इरादा अपीलकर्ता द्वारा प्रतिवादी के नाम पर वाद संपत्ति खरीदने का उद्देश्य प्रतिवादी को लाभ पहुंचाना था। हमारे विचार में, अभिलेख का प्रथम दृष्टया यह निष्कर्ष गलत और विकृत है। हमारे अनुसार, यह निष्कर्ष उच्च न्यायालय द्वारा दूसरी अपील में इस तरह के निष्कर्ष का समर्थन करने के लिए अभिलेख पर किसी भी सामग्री के बिना निकाला गया था और न ही यह मौखिक और दस्तावेजी साक्ष्यों के साथ-साथ निचली अदालत और अपीलीय अदालत द्वारा प्राप्त तथ्य के निष्कर्षों पर विचार करने के बाद आधारित था। दूसरी ओर, हमारे विचार में, अपीलीय अदालत के साथ-साथ निचली अदालत के निष्कर्ष पक्षकारों के अभिलेख और दलीलों पर मौखिक और दस्तावेजी साक्ष्य के उचित विचार-विमर्श पर आधारित थे। प्रतिवादी के लाभ के लिए वाद की संपत्ति खरीदने के इरादे पर विचार करने के लिए, हमारे विचार में, अपीलकर्ता द्वारा प्रतिवादी और दो बेटों के पक्ष में वसीयत निष्पादित करके वाद की संपत्ति की वसीयत करने का तथ्य बिल्कुल भी एक कारक नहीं हो सकता है। अपीलकर्ता द्वारा अपने बेटों और प्रतिवादी के

पक्ष में वसीयत का निष्पादन केवल यह संकेत देगा कि वाद की संपत्ति को उसकी अपनी संपत्ति के रूप में माना गया था और प्रतिवादी को उसके द्वारा कभी भी इसका वास्तविक मालिक स्वीकार नहीं किया गया था। दूसरा आधार जिस पर तथ्य के समवर्ती निष्कर्षों को रद्द कर दिया गया और वाद का फैसला सुनाया गया था, निम्नलिखित प्रभाव वाला है:

"अन्यथा भी, जैसा कि बार में दिए गए साक्ष्य और अभ्यावेदन से एकत्रित किया जा सकता है, उसके पिता शुभ दिनों में अपने सभी बेटों और बेटियों के नाम पर संपत्ति खरीदते थे। यह स्पष्ट रूप से एकत्रित किया जा सकता है कि पिता का इरादा अपने बच्चों को लाभ पहुंचाना था ताकि उसके जीवन काल के बाद संपत्तियों को साझा करने के संबंध में उनके बीच उत्पन्न होने वाले किसी भी संभावित संघर्ष या विवाद से बचा जा सके। इसलिए, समानता और संचयी परिस्थितियों पर भी विचार करते हुए, मैं यह मानने को इच्छुक हूँ कि वादी संपत्ति के मालिक के रूप में रखे जाने का हकदार है।"

हम उच्च न्यायालय के इस निष्कर्ष से सहमत नहीं हो पा रहे हैं। बार के प्रतिविधित पर भरोसा करना मुश्किल है कि अपीलकर्ता शुभ दिनों में अपने बच्चों के नाम पर संपत्ति खरीदता था और इसके लिए अपीलकर्ता

का केवल बेटी के लाभ के लिए संपत्ति खरीदने का इरादा माना जाना चाहिए। अभिलेख से इस निष्कर्ष का समर्थन करने के लिए कोई सामग्री नहीं है। हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि उच्च न्यायालय एक दूसरी अपील पर विचार कर रहा था जो पक्षकार द्वारा पेश किए गए मौखिक और दस्तावेजी साक्ष्य पर विचार के आधार पर तथ्य के समवर्ती निष्कर्षों के खिलाफ दायर की गई थी और ऐसे निष्कर्ष ठोस तर्क पर आधारित थे। अन्यथा भी, हमारा विचार है कि यह धारणा कि वाद की संपत्ति केवल प्रतिवादी के लाभ के लिए खरीदी गई थी, का पूरी तरह से खण्डन अपीलकर्ता द्वारा साक्ष्य जोड़कर किया गया था कि वाद की संपत्ति, हालांकि प्रतिवादी के नाम पर खरीदी गई थी, अपीलकर्ता और उसके परिवार के लाभ के लिए खरीदी गई थी।

जैसा कि यहां पहले उल्लेख किया गया है, अपीलीय अदालत के साथ-साथ निचली अदालत ने मौखिक और दस्तावेजी साक्ष्य सहित सभी सामग्रियों और पक्षों की दलीलों पर विचार करने के बाद ठोस तर्क पर आया कि इस तथ्य के समवर्ती निष्कर्ष पर पहुंचने के लिये वाद की संपत्ति की खरीद प्रतिवादी के नाम पर अपीलकर्ता बेनामी प्रकृति का था। जैसा कि यहां पहले उल्लेख किया गया है, अपीलीय अदालत और निचली अदालत द्वारा तथ्यों के निम्नलिखित निष्कर्षों पर यह निष्कर्ष निकाला गया कि विचाराधीन लेनदेन बेनामी प्रकृति का था:-

- 1) अपीलकर्ता ने खरीद के पैसे का भुगतान किया था।
- 2) मूल स्वामित्व विलेख अपीलकर्ता के पास था। और
- 3) अपीलकर्ता ने सुधार के लिए ऋण जुटाने के लिए वाद की संपत्ति को गिरवी रख दिया था।
- 4) उसने वाद की संपत्ति के लिए करों का भुगतान किया।
- 5) उसने वाद की संपत्ति को प्रतिवादी संख्या 2 से 5 को किराए पर दे दिया था और उनसे किराया वसूल किया था।
- 6) वादी के नाम पर वाद संपत्ति खरीदने का मकसद यह था कि वादी का जन्म शुभ नक्षत्र में हुआ था और अपीलकर्ता का मानना था कि यदि संपत्ति वादी/प्रतिवादी के नाम पर खरीदी गई, तो अपीलकर्ता समृद्ध होगा।
- 7) लेन-देन के आसपास की परिस्थितियाँ, पक्षकार के संबंध और अपीलकर्ता के बाद के आचरण से पता चलता है कि लेन-देन बेनामी प्रकृति का था।

तथ्यों के इन समवर्ती निष्कर्षों को ध्यान में रखते हुए, जो निर्णायक रूप से साबित करेंगे कि प्रश्न में लेनदेन प्रकृति में बेनामी था, आइए अब विचार करें कि क्या अपीलकर्ता बेनामी लेनदेन (निषेध) अधिनियम, 1988

(संक्षेप में "अधिनियम") की शुरुआत के मद्देनजर बेनामी की दलील उठाने का हकदार था और क्या अधिनियम पूर्वव्यापी प्रभाव से लागू था। यदि हां, तो अधिनियम की धारा 4(2) के मद्देनजर, अपीलकर्ता के बचाव में बेनामी की दलील उसके लिए उपलब्ध नहीं थी।

मिथिलेश कुमारी व अन्य बनाम प्रेम बिहारी खरे (1989) 2 एससीसी 95 के मामले में इस न्यायालय की दो न्यायाधीशों की पीठ के फैसले से पहले यह प्रश्न उठा था। उस निर्णय में, यह माना गया अभिनिर्धारित किया गया था कि बेनामी के प्रश्न को वादपत्र या लिखित बयान में एक याचिका के रूप में नहीं लिया जा सकता है, भले ही विक्रेय विलेख को अधिनियम के लागू होने से पहले निष्पादित और पंजीकृत किया गया हो और जब अधिनियम लागू होने से पहले वाद दायर किया गया हो। इससे पहले कि हम आगे बढ़ें, हम खुद को अधिनियम के कुछ प्रावधानों की याद दिला सकते हैं। धारा 2(ए) 'बेनामी लेनदेन' को परिभाषित करती है जिसका अर्थ है कोई भी लेनदेन जिसमें संपत्ति किसी अन्य व्यक्ति द्वारा भुगतान या प्रदान किए गए प्रतिफल के लिए एक व्यक्ति को हस्तांतरित किया जाता है। धारा 3(1) और (2) इस प्रकार हैं:

3(1) "कोई भी व्यक्ति किसी भी बेनामी लेनदेन में प्रवेश नहीं करेगा। (2) उप-धारा (1) में कुछ भी किसी व्यक्ति द्वारा अपनी पत्नी या अविवाहित बेटी के नाम पर संपत्ति की

खरीद पर लागू नहीं होगा और यह माना जाएगा, जब तक कि इसके विपरीत साबित न हो जाए, कि उक्त संपत्ति खरीदी गई थी पत्नी या अविवाहित बेटी के लाभ के लिये खरीदी गई है।" (रेखांकित करना हमारा है)

अधिनियम की धारा 4 बेनामी संपत्ति की वसूली के अधिकार को प्रतिबंधित करती है। यह इस प्रकार है:

4(1)"बेनामी रखी गई किसी भी संपत्ति के संबंध में किसी भी अधिकार को लागू करने के लिए उस व्यक्ति के खिलाफ जिसके नाम पर संपत्ति है या किसी अन्य व्यक्ति के खिलाफ कोई मुकदमाए दावा या कार्रवाई उस व्यक्ति द्वारा या उसकी ओर से नहीं की जाएगी जो यह दावा करता है ऐसी संपत्ति का असली मालिक है।

(2) बेनामी रखी गई किसी भी संपत्ति के संबंध में किसी भी अधिकार पर आधारित कोई भी बचाव, चाहे वह उस व्यक्ति के खिलाफ हो जिसके नाम पर संपत्ति है या किसी अन्य व्यक्ति के खिलाफ ऐसी संपत्ति का असली मालिक होने का दावा करने वाला व्यक्ति को किसी भी मुकदमे, दावे या कार्रवाई में या उसकी ओर से अनुमति नहीं दी जाएगी।"

(रेखांकित करना हमारा है)

चूंकि इस मामले में, हम इस सवाल से चिंतित हैं कि क्या अपीलकर्ता धारा 4(2) में लगाई गई रोक के मद्देनजर अपने बचाव में बेनामी की याचिका उठाने का हकदार था, आइए अब हम अपने बचाव में इस याचिका को लेने के लिए अधिनियम की धारा 4(2) में लगाए गए प्रतिबंध और इस धारा के पूर्वव्यापी संचालन के प्रश्न तक खुद को सीमित रखें या यह प्रावधान संचालन में संभावित है।

अब, इसलिए, सवाल यह उठता है कि क्या अधिनियम की धारा 4(2) के तहत, बेनामी रखी गई किसी संपत्ति के संबंध में किसी भी अधिकार पर बचाव की अनुमति दी जा सकती है, चाहे वह उस व्यक्ति के खिलाफ हो जिसके नाम पर संपत्ति है या किसी अन्य व्यक्ति के खिलाफ, किसी भी मुकदमे, दावे या कार्रवाई में या ऐसी संपत्ति के वास्तविक मालिक होने का दावा करने वाले व्यक्ति की ओर से अनुमति दी जाएगी। जैसा कि पहले ही उल्लेख किया गया है, यह प्रश्न *मिथिलेश कुमारी व अन्य बनाम प्रेम बिहारी खरे* 1989 (2) एससीसी 95 के मामले में इस न्यायालय के समक्ष निर्णय के लिए आया था। वास्तव में, इस प्रावधान के पूर्वव्यापी संचालन जैसा कि यहां पहले उल्लेख किया गया था का पूर्वोक्त निर्णय में सकारात्मक उत्तर दिया गया था। हालाँकि, उस निर्णय की सत्यता पर संदेह किया गया था और इस न्यायालय द्वारा एक आदेश पारित किया गया था, जिसके बाद निर्णय के लिए पूर्वव्यापीता के इस प्रश्न

को इस न्यायालय की 3-न्यायाधीशों की पीठ के पास भेज दिया गया था। एलआर द्वारा आर. राजगोपाल रेड्डी (मृत) अन्य, बनाम पद्मिनी चन्द्रशेखरन (मृत) एलआर द्वारा 1995 (2) एससीसी 630, के मामले में एसबी मजमुदार, जे. (जैसी कि उनका प्रभुता तब थी) तीन न्यायाधीशों की पीठ के लिए निर्णय लिखते हुए मिथिलेश कुमारी के मामले में व्यक्ति विचारों से सहमत नहीं हो सके और माना कि अधिनियम प्रकृति में संभावित था और यह है कुछ मामलों के संबंध में की गई कुछ टिप्पणियों को छोड़कर, जिनका उल्लेख यहां आगे किया जाएगा, कोई पूर्वव्यापी संचालन नहीं होगा। अनुच्छेद 10 में इसे इस प्रकार देखा गया:- "हालांकि विधि आयोग ने प्रस्तावित विधान की पूर्वव्यापी प्रयोज्यता की सिफारिश की थी संसद ने अपने विवेक से अधिनियम या इसके किसी भी अनुभाग को पूर्वव्यापी नहीं बनाया।" इसके बाद अधिनियम की धारा 3 और 4 के तहत किए गए प्रावधानों पर सावधानीपूर्वक विचार करने पर यह पाया गया:

"उपरोक्त प्रावधानों पर केवल एक नज़र डालने से पता चलता है कि धारा 3 (1) के तहत निषेध उन व्यक्तियों के खिलाफ है जो बेनामी लेनदेन में प्रवेश करना चाहते हैं और यह निर्धारित किया गया है कि कोई भी व्यक्ति किसी भी बेनामी लेनदेन में प्रवेश नहीं करेगा, जिसका स्पष्ट रूप से

उस तारीख से मतलब है जिस दिन से यह निषेध अर्थात् डब्ल्यू.इ.एस. 5/9/1988 से लागू हुआ है। यह भविष्य के बेनामी लेनदेन का ध्यान रखता है। हम उप-धारा (2) से चिंतित नहीं हैं, लेकिन धारा 3 की उप-धारा (3) भी इस पहलू पर प्रकाश डालती है। जैसा कि ऊपर देखा गया है, इसमें कहा गया है कि जो कोई भी किसी बेनामी लेनदेन में प्रवेश करता है, उसे तीन साल तक की कैद या जुर्माना या दोनों से दंड दिया जा सकता है। इसलिए, प्रावधान ऐसे बेनामी लेनदेन में प्रवेश करने का एक नया अपराध बनाता है। यह गैर-संज्ञेय और जमानती बनाया गया है। जैसा कि उप-धारा (4) के तहत निर्धारित किया गया है। यह स्पष्ट है कि जब कोई वैधानिक प्रावधान नया दायित्व और नया अपराध बनाता है, तो स्वाभाविक रूप से इसका संभावित संचालन होगा और केवल उन अपराधों को शामिल किया जाएगा जो धारा 3(1) के लागू होने के बाद होते हैं।" (रेखांकित करना हमारा है)

"इस न्यायालय के उक्त निर्णय के अनुच्छेद 11 में, सर्वोच्च न्यायालय ने आगे कहा, "इसके विपरीत, "एसा कोई दावा, मुकदमा या कार्रवाई नहीं होगी, शब्दों से स्पष्ट विधायी

इरादा देखा जाता है, जिसका अर्थ है कि ऐसा कोई मुकदमा, दावा या कार्रवाई नहीं होगी। धारा 4(1) के लागू होने के बाद ऐसी राहत की मांग के लिए किसी भी अदालत के पोर्टल पर दायर करने या स्वीकार करने या स्वीकार करने की अनुमति नहीं दी जाएगी।" (रेखांकित करना हमारा है)

इसी पैराग्राफ में सर्वोच्च न्यायालय ने कहा:

"इस संबंध में, यह विचार लिया गया है कि धारा 4(1) ऐसे लंबित मुकदमों पर भी लागू होगी जो धारा लागू होने की तारीख से पहले ही दायर किये गये थे और विचार किया गया था और जिसका वादी के तत्कालीन मौजूदा अधिकार को नष्ट करने का प्रभाव है। धारा 4(1) की स्पष्ट भाषा के सामने वाद की संपत्ति के साथ संबंध को बरकरार नहीं रखा जा सकता है। यह कल्पना की जानी चाहिए कि विधायिका ने अपने विवेक से स्पष्ट रूप से धारा 4 को पूर्वव्यापी नहीं बनाया है। फिर आवश्यक निहितार्थ से यह कहना होगा कि धारा 4 का पूर्वव्यापी प्रभाव होगा और इस धारा के लागू होने से पहले दायर लंबित मुकदमों को शामिल किया जाएगा, यह एक ऐसा दृष्टिकोण अपनाने जैसा होगा जो विधायी योजना और अधिनियम के विभिन्न प्रावधानों द्वारा

अनुमानित इरादे के विपरीत होगा, जिसका हमने पहले उल्लेख किया है। हालाँकि, जैसा कि डिवीजन बेंच ने माना है कि धारा 4(1) की स्पष्ट भाषा में, बेनामी रखी गई किसी भी संपत्ति के संबंध में वास्तविक मालिक का कोई भी अधिकार धारा 4(1) के लागू होने के बाद नष्ट हो जाएगा, भले ही ऐसा लेनदेन धारा 4(1) के लागू होने से पहले दर्ज किया गया था, और इसलिये धारा 4(1) लागू होने पर ऐसे पिछले बेनामी लेनदेन के संबंध में कोई मुकदमा दायर नहीं किया जा सकता है। उस सीमा तक यह धारा पूर्वव्यापी हो सकती है।"

हमारे विचार में, अधिनियम की धारा 4(2) की पूर्वव्यापीता के प्रश्न पर कानून की स्थिति भी ऐसी ही है।

अंततः, इस न्यायालय ने उपरोक्त निर्णय में यह माना कि *मिथिलेश कुमारी व अन्य बनाम प्रेम बिहारी खरे* के मामले में दिये गये निर्णय ने यह विचार करने में गलती की कि धारा 4(2) के तहत, उन व्यक्तियों द्वारा दायर सभी मुकदमों में जिनके नाम पर संपत्तियां हैं, कार्यवाही के किसी भी भविष्य के चरण में कोई बचाव की अनुमति नहीं दी जा सकती है कि संपत्तियों को बेनामी नहीं रखा जा सकता है। यह भी अभिनिर्धारित किया गया कि धारा 4(2) के लागू होने के बाद लंबित मुकदमों के मामलों में भी

धारा 4(2) का सीमित संचालन होगा, यदि ऐसे बचाव की पहले से ही अनुमति नहीं है। आर. राजगोपाल रेड्डी (मृत) जरिये एलआर आर और अन्य बनाम पद्मिनी चन्द्रशेखरन (मृत) एलआर द्वारा 1995 (2) एससीसी 630 के निर्णय में मिथिलेश कुमारी व अन्य बनाम प्रेम बिहारी खरे के मामले में दो न्यायाधीशों की पीठ के फैसले को खारिज कर दिया। प्रबोध चंद्र घोष बनाम उर्मिला दसी (एआईआर 2000 एससी 2534 और सी. गंगाचरण बनाम सी. नारायणन एआईआर 2000 एससी 589) के मामलों में भी इस न्यायालय द्वारा अनुमोदित किया गया था। उपरोक्त को ध्यान में रखते हुए, यह प्रश्न अब समाकलन नहीं है।

इसलिए, अब हमें इस मामले में विचार करना है कि क्या खुलासा किए गए तथ्य यह संकेत देंगे कि अधिनियम के लागू होने के बाद भी धारा 4 के तहत बचाव उपलब्ध हो सकता है। माना जाता है कि विचाराधीन लेनदेन 24 अगस्त 1970 को पंजीकृत किया गया था। मुकदमा 5 जुलाई 1984 को दायर किया गया था जो अधिनियम के लागू होने से बहुत पहले था। यह एक स्वीकृत स्थिति है कि बेनामी की दलील लेने वाले मुकदमे में लिखित बयान भी अधिनियम लागू होने से बहुत पहले अपीलकर्ता द्वारा दायर किया गया था। इसलिए, यह ऐसा मामला नहीं था जहां अधिनियम की धारा 4(2) लागू होने के बाद लंबित मुकदमे में अधिनियम की धारा 4(2) का सीमित संचालन होगा। यह सच है कि

निचली अदालत का फैसला अधिनियम लागू होने के बाद दिया गया था, लेकिन यह अपीलकर्ता के अपने बचाव में बेनामी की दलील लेने के अधिकार को बाधित नहीं कर सकता था। चूंकि अधिनियम वर्तमान मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में कोई पूर्वव्यापी संचालन नहीं कर सकता है, जैसा कि इस न्यायालय ने पूर्वोक्त निर्णय में कहा था, इसलिए हमारा विचार है कि अपीलकर्ता लिखित बयान में बेनामी की दलील उठाने का हकदार था और यह दिखाने और साबित करने के लिए कि वह वाद की संपत्ति का असली मालिक था और प्रतिवादी केवल उसका बेनामीदार था।

इस निर्णय से अलग होने से पहले, हम प्रतिवादी के विद्वान वकील की संक्षिप्त प्रस्तुति पर विचार कर सकते हैं। दलील यह है कि चूंकि वाद की संपत्ति अपीलकर्ता द्वारा प्रतिवादी के नाम पर खरीदी गई थी, इसलिए यह माना जाना चाहिए कि वाद की संपत्ति उसके द्वारा प्रतिवादी के लाभ के लिए खरीदी गई है। धारा 3 बेनामी लेनदेन पर रोक से संबंधित है। उपधारा (1) स्पष्ट रूप से प्रतिबंधित करती है कि कोई भी व्यक्ति बेनामी लेनदेन नहीं करेगा। हालाँकि, धारा 3 की उपधारा (2) स्पष्ट रूप से कहती है कि उपधारा (1) की कोई भी बात किसी भी व्यक्ति की पत्नी, अविवाहित बेटी के नाम पर संपत्ति की खरीद पर लागू नहीं होगी और इसे तब तक माना जाएगा जब तक कि इसके विपरीत साबित न हो।

धारा 3(2) यह बहुत स्पष्ट करती है कि यदि कोई संपत्ति अविवाहित बेटी के नाम पर उसके लाभ के लिए खरीदी जाती है, तो यह केवल एक धारणा होगी, लेकिन उस धारणा का खंडन उस व्यक्ति द्वारा किया जा सकता है जो अदालत के समक्ष साक्ष्य या अन्य सामग्री पेश करके संपत्ति का वास्तविक मालिक होने का आरोप लगा रहा है। इस मामले में, निचली अदालत के साथ-साथ अपील्य अदालत ने समवर्ती रूप से पाया कि यद्यपि वाद की संपत्ति प्रतिवादी के नाम पर खरीदी गई थी, लेकिन इसे अपीलकर्ता के हित के लिए खरीदा गया था। इसलिए हमारी राय है कि भले ही अधिनियम की धारा 3(2) के तहत धारणा पिता (इस मामले में अपीलकर्ता) द्वारा अपनी बेटी (इस मामले में प्रतिवादी) के नाम पर वाद की संपत्ति खरीदने के कारण उत्पन्न हुई हो, उस अनुमान का खंडन किया गया क्योंकि अपीलकर्ता ने ठोस सबूत पेश करके यह साबित करने में सफलता हासिल कर ली थी कि वाद की संपत्ति प्रतिवादी की बेनामी में उसके अपने फायदे के लिए खरीदी गई थी।

आइए अब विचार करें कि क्या तथ्य के समवर्ती निष्कर्षों को दूसरी अपील में उच्च न्यायालय द्वारा दरकिनार किया जा सकता है। इस न्यायालय के विविध निर्णयों से यह अच्छी तरह से तय हो गया है कि उच्च न्यायालय दूसरी अपील में तथ्य के समवर्ती निष्कर्षों में हस्तक्षेप करने का हकदार है यदि तथ्य के उक्त समवर्ती निष्कर्ष प्रकृति में साक्ष्य के

एक महत्वपूर्ण टुकड़े पर विचार न करने पर आधारित हैं। मुकदमे में एक पक्ष का प्रवेश, जिसे नीचे की दो अदालतों ने नजरअंदाज कर दिया है (देखें [2003 (7) एससीसी 481, देवा (मृत) एलआर के माध्यम से बनाम सज्जन कुमार (मृत) एलआर द्वारा])। यह समान रूप से अच्छी तरह से तय है कि सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 100 के तहत, उच्च न्यायालय अपर्याप्त और उचित कारणों के बिना निचली अदालतों के तथ्यों के समवर्ती निष्कर्षों में हस्तक्षेप नहीं कर सकता है। (देखें [2003(7)एससीसी 52, सईदा अख्तर बनाम अब्दुल अहद])। दूसरी अपील में, उच्च न्यायालय अभिलेख पर साक्ष्य के विपरीत अपने स्वयं के निष्कर्ष देकर तथ्य के समवर्ती निष्कर्षों को दरकिनारा करने का भी हकदार नहीं है। (देखें [2001 (4) एससीसी 694, सरस्वती एवं अन्य बनाम एस.गणपति एवं अन्य])।

जैसा कि यहां पहले कहा गया था, उच्च न्यायालय ने तथ्यों के समवर्ती निष्कर्षों को पक्षकार द्वारा प्रस्तुत साक्ष्यों पर विचार किए बिना खारिज कर दिया था, बल्कि अभिलेख पर मौजूद साक्ष्यों के विपरीत निष्कर्षों के आधार पर और अपीलीय अदालत और निचली अदालत द्वारा सामने आए तथ्य के निष्कर्षों पर विचार किए बिना तथ्य के समवर्ती निष्कर्षों को दरकिनारा कर दिया था। उच्च न्यायालय के फैसले से हम आगे पाते हैं कि तथ्य के समवर्ती निष्कर्षों को निचली अदालतों द्वारा निकाले गए तथ्य के निष्कर्षों पर विचार करने के आधार पर नहीं, बल्कि केवल

प्रतिवादी के विद्वान वकील के तर्कों के आधार पर अलग रखा गया था। दूसरी अपील में उच्च न्यायालय को निचली अदालत के साथ-साथ अपीलीय अदालत के निष्कर्षों पर विचार किए बिना केवल प्रतिवादी के विद्वान वकील के तर्कों के आधार पर अपने स्वयं के विपरीत निष्कर्ष पर आने की अनुमति नहीं थी। (देखें [002(9) एससीसी 735, *गंगाजल कुँवर (श्रीमती) और अन्य बनाम सरजू पांडे (मृत) एलआर और अन्य द्वारा*])। यह समान रूप से तय किया गया है कि दूसरी अपील में उच्च न्यायालय निचली अदालतों द्वारा निकाले गए तथ्य के समवर्ती निष्कर्षों में हस्तक्षेप करने का हकदार नहीं है, जब तक कि यह नहीं पाया जाता कि तथ्य के समवर्ती निष्कर्ष विकृत थे और ठोस तर्क पर आधारित नहीं थे। हमने खुद अभिलेख पर मौजूद साक्ष्य के साथ-साथ नीचे की दो अदालतों द्वारा निकाले गए तथ्यात्मक निष्कर्षों पर भी विचार किया। इस तरह के विचार से हम यह नहीं पाते हैं कि अपीलीय अदालत के साथ-साथ निचली अदालत द्वारा निकाले गए तथ्य के समवर्ती निष्कर्ष या तो विकृत थे या बिना किसी कारण के थे या साक्ष्य के महत्वपूर्ण टुकड़े पर विचार न करने या कुछ पक्षों की स्वीकृति पर आधारित थे। इसलिए हमारा विचार है कि अपीलीय अदालत के साथ-साथ निचली अदालत द्वारा निकाले गए तथ्यों के समवर्ती निष्कर्षों जो निष्कर्ष दलीलों के साथ-साथ सामग्री (मौखिक और दस्तावेजी) अभिलेख पर साक्ष्य पर विचार करने के बाद दिए गए थे, में हस्तक्षेप करना उच्च न्यायालय के लिए उचित नहीं था।

उपरोक्त कारणों से यह अपील स्वीकार की जाती है। इस न्यायालय में लगाए गए उच्च न्यायालय के फैसले को दरकिनार कर दिया गया है और निचली अदालत के साथ-साथ अपीलीय अदालत के निर्णयों की पुष्टि की गई है। प्रतिवादी द्वारा दायर मुकदमा खारिज कर दिया जाएगा।

लागत के रूप में कोई आदेश नहीं होगा।

अपील की अनुमित दी।

यह अनुवाद आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस टूल 'सुवास' की सहायता से अनुवादक न्यायिक अधिकारी श्रीमती उपासना कावट (आर.जे.एस.) द्वारा किया गया है।

अस्वीकरण: यह निर्णय पक्षकार को उसकी भाषा में समझाने के सीमित उपयोग के लिए स्थानीय भाषा में अनुवादित किया गया है और किसी अन्य उद्देश्य के लिए इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और आधिकारिक उद्देश्यों के लिए, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रामाणिक होगा और निष्पादन और कार्यान्वयन के उद्देश्य से भी अंग्रेजी संस्करण ही मान्य होगा।